



परशुराम को अंबा की प्रार्थना पसंद आई। बड़े उत्साह के साथ वह भीष्म के पास गए और उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। दोनों कुशल योद्धा थे और धनुष-विद्या के जानकार भी। दोनों ही जितेंद्रिय और ब्रह्मचारी थे। समान योद्धाओं की टक्कर थी। कई दिनों तक युद्ध होता रहा, फिर भी हार-जीत का निश्चय न हो सका। अंत में परशुराम ने हार मान ली और उन्होंने अंबा से कहा—“जो कुछ मेरे वश में था, कर चुका। अब तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम भीष्म ही की शरण लो।”

पर अंबा ऐसी बातों से कब विचलित होनेवाली थी? उसने वन में जाकर फिर तपस्या शुरू की

और तपोबल से स्त्री-रूप छोड़कर पुरुष बन गई और उसने अपना नाम शिखंडी रख लिया।

जब कौरवों और पांडवों के बीच कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध हुआ, तो भीष्म के विरुद्ध लड़ते समय शिखंडी रथ के आगे बैठा था और अर्जुन ठीक उसके पीछे। ज्ञानी भीष्म को यह बात मालूम थी कि अंबा ही शिखंडी का रूप धारण किए हुए है। इसलिए उन्होंने उस पर बाण चलाना अपनी वीरोचित प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। शिखंडी को आगे करके अर्जुन ने भीष्म पितामह पर हमला किया और अंत में उन पर विजय प्राप्त की। जब भीष्म आहत होकर पृथ्वी पर गिरे, तब जाकर अंबा का क्रोध शांत हुआ।



विदुर

विचित्रवीर्य की रानी अंबालिका की दासी की कोख से धर्मदेव का जन्म हुआ था। वह ही आगे चलकर विदुर के नाम से प्रख्यात हुए। धर्मशास्त्र तथा राजनीति में उनका ज्ञान अथाह था। वह बड़े निःस्पृह थे। क्रोध उन्हें छू तक नहीं गया था। युवावस्था में ही पितामह भीष्म ने उनके विवेक तथा ज्ञान से प्रभावित होकर उन्हें राजा धृतराष्ट्र का प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया था। जिस समय धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को जुआ खेलने की अनुमति दी, विदुर ने धृतराष्ट्र से बहुत आग्रहपूर्वक निवेदन किया—“राजन्, मुझे आपका यह काम ठीक नहीं जँचता। इस खेल के कारण आपके बेटों में आपस में वैरभाव बढ़ेगा। इसको रोक दीजिए।”

धृतराष्ट्र विदुर की बात से प्रभावित हुए और अपने बेटे दुर्योधन को अकेले में बुलाकर उसे इस कुचाल से रोकने का प्रयत्न किया। बड़े प्रेम के साथ वह बोले—“गांधारी के लाल! विदुर बड़ा बुद्धिमान है और हमेशा हमारा भला चाहता आया है। उसका कहा मानने में ही हमारी भलाई है। वत्स! जुआ खेलने का विचार छोड़ दो। विदुर कहता है कि उससे विरोध बहुत बढ़ेगा और वह राज्य के नाश का कारण हो जाएगा। छोड़ दो इस विचार को।”

धृतराष्ट्र ने अपने बेटे को सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया, किंतु दुर्योधन न माना। वृद्ध धृतराष्ट्र अपने बेटे से बहुत स्नेह करते थे। अपनी इस कमजोरी के कारण उसका अनुरोध



वह टाल न सके और युधिष्ठिर को जुआ खेलने का न्यौता भेजना ही पड़ा।

धृतराष्ट्र पर बस न चला, तो विदुर युधिष्ठिर के पास गए। उनको जुआ खेलने को जाने से रोकने का प्रयत्न किया। युधिष्ठिर ने विदुर की सब बातें ध्यानपूर्वक सुनीं और बड़े आदर के

साथ बोले—“चाचा जी! मैं यह सब मानता हूँ, पर जब काका धृतराष्ट्र बुलाएँ, तो मैं कैसे इंकार करूँ? युद्ध या खेल के लिए बुलाए जाने पर न जाना क्षत्रिय का धर्म तो नहीं है।”

यह कहकर युधिष्ठिर क्षत्रिय-कुल की मर्यादा रखने के लिए जुआ खेलने गए।



कुंती

यदुवंश के प्रसिद्ध राजा शूरसेन श्रीकृष्ण के पितामह थे। इनके पृथा नाम की कन्या थी। उसके रूप और गुणों की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। शूरसेन के फुफेरे भाई कुंतिभोज के कोई संतान न थी। शूरसेन ने कुंतिभोज को वचन दिया था कि उनकी जो पहली संतान होगी, उसे कुंतिभोज को गोद दे देंगे। उसी के अनुसार शूरसेन ने कुंतिभोज को पृथा गोद दे दी। कुंतिभोज के यहाँ आने पर पृथा का नाम कुंती पड़ गया।

कुंती के बचपन में ऋषि दुर्वासा एक बार कुंतिभोज के यहाँ पधारे। कुंती ने एक वर्ष तक बड़ी सावधानी व सहनशीलता के साथ उनकी सेवा-सुश्रूषा की। उसकी सेवा-टहल से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हुए और उसे उपदेश दिया और बोले—“कुंतिभोज-कन्ये, तुम किसी भी देवता का ध्यान करोगी, तो वह अपने ही समान एक तेजस्वी पुत्र तुम्हें प्रदान करेगा।”

इस प्रकार सूर्य के संयोग से कुमारी कुंती ने सूर्य के समान तेजस्वी एवं सुंदर बालक को जन्म दिया। जन्मजात कवच और कुंडलों से

शोभित वही बालक आगे चलकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण के नाम से विख्यात हुआ। लेकिन अब कुंती को लोक-निंदा का डर हुआ। उसने बच्चे को छोड़ देना ही उचित समझा। इसलिए बच्चे को एक पेटी में बड़ी सावधानी के साथ बंद करके उसे गंगा की धारा में बहा दिया। बहुत आगे जाकर अधिरथ नाम के एक सारथी की नजर उस पर पड़ी। उसने पेटी निकाली और खोलकर देखा, तो उसमें एक सुंदर बच्चा सोता हुआ मिला। अधिरथ निःसंतान था। बालक को पाकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सूर्य-पुत्र कर्ण इस तरह एक सारथी के घर पलने लगा।

इधर कुंती विवाह के योग्य हुई। राजा कुंतिभोज ने उसका स्वयंवर रचा। उससे विवाह करने की इच्छा से देश-विदेश के अनेक राजकुमार स्वयंवर में आए। हस्तिनापुर के राजा पांडु भी स्वयंवर में शरीक हुए थे। कुंती ने उन्हीं के गले में वरमाला डाल दी। महाराज पांडु का कुंती से ब्याह हो गया और वह कुंती सहित हस्तिनापुर लौट आए।

उन दिनों राजवंशों में एक से अधिक ब्याह करने की प्रथा प्रचलित थी। इसी रिवाज के